सर्वोदय और संघ, आमने सामने

लेखक महावीर

भारत में दो ऐसे संगठन हैं जो पिछले पचास वषा से निरंतर चर्चा में रहे हैं। एक है सर्वोदय और दूसरा है राष्टोय स्वयं सेवक संघ। दोनों ही संगठनों में एक से बढकर एक त्यागी तपस्वी लोगों की बहुलता है। दोनों ही के लोग निरंतर सकिय रहते हैं। दोनों की ही अपनी विशिष्ट कार्य प्रणाली है।

अनेक समानताओं क बाद भी दोनों में काफी असमानताएँ हैं। संघ एक संगठन का स्वरूप है जिसके नेता निर्णय करते हैं और कार्यकर्ता तदनुसार आचरण करते है जबकि सर्वोदय का प्रत्येक कार्यकर्ता ही स्वयं में एक नेता है। इसमें न तो एक नेतृत्व है न ही प्रतिबद्ध अनुकरण कर्ता। संघ का एक स्पष्ट लक्ष्य है हिन्दू तुष्टीकरण के माध्यम से भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका अदा करना। सर्वोदय दिशा हीन है। उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं। कभी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन तो कभी स्वदेशी का नारा। कभी ग्राम स्वराज्य तो कभी साम्प्रदायिकता उन्मूलन। एक वर्ष के लिय भी इनक लक्ष्य टिकाऊँ या स्पष्ट नहीं होते। संघ मुस्लिम संगठनों की किया के विरूद्ध तीव्र योजनाबद्ध तथा परिणाम मूलक प्रतिकिया करता है। सर्वोदय संघ की प्रतिकिया के विरूद्ध लचर अविचारित तथा शक्ति प्रदर्शन के लिये प्रतिकिया करता हैं। संघ अन्य संगठनों का उपयोग करना जानता है जबकि सर्वोदय किसी संगठन का उपयोग नहीं कर सकता भले ही उसी का कोई उपयोग कर ले। संघ नेतृत्व पूरी तरह सतर्क सक्रिय और चालाक है। सर्वोदय नेतृत्व सक्रिय तो है किन्तु ढीला ढाला तथा शरीफ प्रवृति का है। संघ का उद्देश्य सत्ता प्रधान है, और परिणाम सफलता है जबकि सवोदय का उद्देश्य जनहित का है किन्तु परिणाम शून्य है।

सर्वोदय का पटना सम्मेलन सम्पन्न हुआ। मंच पर कुलदीप नैयर, प्रभाषजोशी सहित अनेक बुद्धिजीवी मौजूद थे। तीन दिनों के सम्मेलन में सिर्फ साम्प्रदायिकता ही विचारणीय मुद्दा रहा। साम्प्रदायिकता की चर्चा भी गुजरात चुनावों पर आकर सिमट गई। तय किया गया कि गुजरात के आगामी चुनावों में सर्वोदय का बिल्कुल सामने आकर भा.ज.पा. को हराना है। घोषित किया गया कि वर्तमान गुजरात चुनाव में, सर्वोदय के अस्तित्व को चुनौती मानकर प्रत्येक गाधीवादी कार्यकर्ता को पूरी शक्ति से लग जाना है। सभी वक्ताओं ने एक से बढकर एक घोषणाएँ की। ऐसा लगा कि गुजरात चुनाव एक तरह से सर्वोदय ही लड रहा है। चुनाव की तारीख घोषित होते ही सभी कार्यकर्ताओं को गुजरात जाने का आहवान किया गया। संघ की साम्प्रदायिकता की भरपूर आलोचना हुई। किन्तु यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता की पूरे कार्यक्रम में कोई चर्चा ही नही हुई। कई वक्ताओं ने तो गोधरा अग्नि कांड तथा ग्यारह सितम्बर के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर आकमण तक में मुस्लिम कट्टरवाद का बचाव किया। तीन दिनों का पूरा सम्मेलन देखकर कोई भी तटस्थ प्रेक्षक यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि उपरोक्त आयोजन धर्म निरपेक्ष तटस्थ तथा समाधान खोजी विचारकों का सम्मेलन न होकर ऐसे शरीफ, भावना प्रधान तथा दिकभ्रमित। किन्तु स्थापित लोगो का सम्मेलन है जो पूरी तरह वामपंथी नारो से प्रभावित है। प्रभाष जी जोशी का भाषण पूरी तरह तथ्यों पर आधारित था किन्तु निष्कर्ष एक पक्षीय थे। उन्हाने कहा कि संघ हिन्दुओं का चर्च बनाना चाहता है जिससे कि वह भी हिन्दुओं को उसी तरह मनमानी दिशा में संचालित कर सके जिस तरह चर्च। उन्हांने यह भो कहा कि संघ हिन्दुओं का तालिबानीकरण करना चाहता है जो कि हिन्दुओं के लिए घातक है। श्री प्रभात जी की दोनों ही बातें अक्षरशः सत्य है। संघ के ये प्रयास हिन्दुओं के लिये घातक है। किन्तु इसाइयों की चर्च प्रणाली और मुसलमानों की तालिबानी कट्टरवाद समाज के लिये घातक है यह बात वे नहीं कह सके। सर्वोदय के उस मंच से हिन्दुत्व की मूल अवधारणा की सुरक्षा हेतु संघ को चुनौती दी गई किन्तु समाज की मूल अवधारणा को इसाइयों की चर्च प्रणाली तथा मुसलमानों की तालिबान प्रणाली से होने वाले खतरों के प्रति समझते हुए भी चुप रहना उचित समझा गया। ऐसा महसूस हुआ कि राष्टोय स्वयं सेवक संघ भारतीय जनता पार्टी की ही एक सामाजिक शाखा की तरह काम करती है तथा सर्वोदय कांग्रेस की सामाजिक शाखा की तरह है। सर्वोदय की प्रत्येक चर्चा में गांधी हत्या की प्रतिकिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सर्वोदय गांधी हत्या के लिए ता संघ को अक्षम्य दोषी मानता है किन्तु भारत विभाजन में मुसलमानों की भूमिका अथवा सम्पूर्ण विश्व में अन्य धर्मावलम्बियों से निरंतर टकराव में मुसलमानों की भूमिका को भूल जाने योग्य दोष से अधिक नहीं मानता।

मेरे विचार में सर्वोदय भटक रहा है। सन पचहत्तर में सर्वोदय ने इंदिरा गांधी की तानाशाही के विरूद्ध एक निर्णायक पहल को। किन्तु सर्वोदय से भूल हुई कि उसने उक्त पहल करने में संघ तथा साम्यवादियों का मिलाकर एक मंच बना दिया। संघ और साम्यवादी उतने ही कट्टर होते है जितने कि मुसलमान। ये व्यक्ति के रूप में तो कहीं भी रह सकते हैं किन्तु दल के रूप में ये पूरी तरह सतर्क और सक्रिय रहते है। सर्वोदय ने तानाशाही के विरूद्ध ऐतिहासिक संघर्ष का नेतृत्व किया किन्तु देश में कोई निर्णायक परिर्वतन नहीं आ सका। अब पुनः सर्वोदय गुजरात में वही भूल दुहराने जा रहा है। गुजरात में भा.ज.पा. को हराकर कांग्रेस को सत्ता दिलाने से सवोदय की अपनी शक्ति का प्रदर्शन तो संभव है किन्तु समाज को कोई लाभ नहीं होगा। संघ को साथ लेकर सर्वोदय ने कांग्रेस को सबक सिखाया था और अब कांग्रेस को साथ लेकर भा.ज.पा.को सबक सिखाना किसी दृष्टि से समाज की समस्याओं के समाधान में ठोस पहल नहीं है। सर्वोदय को इससे बचना चाहिए।

वर्तमान समय में भारत ग्यारह ऐसी समस्याओं से जूझ रहा है जिनके समाधान की दिशा में न भा.ज.पा. गम्भीर है न ही कांग्रेस। ये ह– 1. चोरी डकैती लूट, 2. बलात्कार 3. आतंकवाद 4. धोखा 5. मिलावट, कमतौल 6. आर्थिक असमानता, 7. श्रम शोषण 8. चरित्र पतन 9. भ्रष्टाचार, 10.साम्प्रदायिकता 11. जातीय संघर्ष। ये सभी समस्याएँ निरंतर चिन्ताजनक रूप से बढ रही है। सर्वोदय का कर्तव्य है कि वह इन सभी समस्याओं पर गम्भीर मंथन करे। सन पचहत्तर का जयप्रकाश आंदोलन भ्रष्टाचार के विरूद्ध कान्ति का प्रयास था और वर्तमान गुजरात आन्दोलन

साम्प्रदायिकता के विरूद्ध क्रान्ति का प्रयास था। पचहत्तर की क्रान्ति सफल होकर भी भ्रष्टाचार पर कोई निर्णायक रोक नहीं लगा सकी और वर्तमान गुजरात आंदोलन यदि सफल भी हो जाये तो साम्प्रदायिकता पर कोई रोक नहीं लगेगी भले ही साम्प्रदायिक संघर्षो में शामिल एक पक्ष "संघ" कमजोर हो जावे। एक दूसरे पर अन्याय करने के उद्‌दश्य से संघर्ष कर रहे मुस्लिम और संघ परिवार में से किसी एक का ऐसा विरोध करना जो दूसरे को मजबूत कर दे न ता न्यायसंगत है नही समस्या का समाधान। शान्ति के उद्‌देश्य से अन्याय को प्रोत्साहन किसी दृष्टि से उचित नहीं है। गुजरात में सर्वोदय के प्रयास कुछ इसी तरह की भूल माने जाने चाहिये।

उपर लिखी ग्यारह समस्याओं पर गम्भीरता से चिन्तन मनन करें तो ये सभी एक दूसरे से जुडी हुई

है इन सबका सामूहिक समाधान के साथ साथ इनके अलग अलग समाधान भी करने होंगे किन्तु सभी समस्याओं पर एक साथ काम शुरू करना होगा। संघ सिर्फ एक समस्या के समाधान में लगा हुआ है और सर्वोदय ढुलमुल नीति पर चलता रहता हैं। संघ और सर्वोदय यदि मिलकर इन ग्यारह समस्याओं के समाधान मं लग जावें तो एक वर्ष ही पर्याप्त है। किन्तु इसके लिये संघ को अपनी नीयत ठीक करनी होगी और सर्वोदय को अपनी नीतियाँ बदलनी पडगी अर्थात संघ को अपनी चालाकी कम करनी होगी और सर्वोदय को चालाकी बढानो होगी। यदि संघ अपने लक्ष्य में संशोधन न भी करना चाहे तो सर्वोदय अकेला भी पॉच वर्षो में सफल परिवर्तन कर सकता है। किन्तु सर्वोदय को अपने शराफत को समझदारी में बदलना होगा। यदि अब भी सर्वोदय ने अपनी नीतियों में आमूल चूल परिवर्तन नहीं किया तो सर्वोदय समाज की समस्याओं के समाधान में कोई निर्णायक भूमिका निभा सकेगा, इसमें मुझे पूरा संदेह है।

प्रश्नोत्तर

1 श्री भरत गाँधी, मेरठ

ज्ञान तत्व कमांक संतावन में लिखे मुक्तानन्द जी के विचारों पर अजमेर के पूर्व वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी श्री एम. एस. सिंगला जी ने अपनी प्रतिकिया मेरे पास भेजी है। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है। श्री सिंगला जी ने मुक्तानन्द जी के सभी सुझावों को अस्वीकार किया है। किन्तु उनके तर्को में दम नहीं है। श्री सिंगला जी ने पहले उत्तर में लिखा है कि पचास वर्षो में भारत को क्या मिला? सिर्फ आश्वासन ही मिले है। मेरे विचार में श्री सिंगला जी का सोचना गलत है। पचास वर्षो में भारत को काफी कुछ मिला है। भले ही वह आशा से कम है या अपर्याप्त है।

श्री सिंगला जी ने इस आधार पर आयकर समाप्त करने की सिफारिश की है कि इससे पूँजीपतियों का परमार्थ भाव जगेगा। मेरे विचार में आय कर खतम कर देने से परमार्थ भाव भी जग सकता है और भोग विलास भाव भी। यह अन्तर करना आसान नहीं कि किसका कौन सा भाव जगेगा। श्री सिंगला जी का विचार पूरी तरह पूँजीवाद पर आधारित है।

श्री सिंगला जी ने आवश्यकता की न्यूनतम सीमा उपभोग की अधिकतम सीमा घोषित करने की मुक्तानन्द जी की मांग का मजाक उडाते हुए लिखा है कि भारत जैसे उच्च आध्यात्म प्रधान देश में अनावश्यक भी है और असंभव भी। मेरे विचार में संतो की सादगी के प्रवचनों का भोली भाली गरीब और निरीह जनता पर तो असर होता है किन्तु पांच लाख का पण्डाल लगाने वाले पूँजीपति पर कोई असर नहीं होता। यदि भारत में आध्यात्मिक नियंत्रण है तो फिर कानूनी नियंत्रण के घबराहट क्यों? जो स्वतः नियंत्रित है उन पर कानून कुछ नहीं करता है। कानून तो सिर्फ उनके लिये ही है जो ऐसी सीमा को नहीं मानते।

अन्त में श्री सिंगला जी ने श्री मुक्तानन्द जी के सम्पूर्ण कथन को साम्यवादी विचारों से प्रभावित मानते हुए लिखा है कि कानूनों की अधिकता के दुष्परिणाम भारत निरंतर भुगत रहा है। कानूनों की अधिकता ने अनैतिकता को प्रोत्साहन दिया है। और अनैतिकता में वृद्धि बहुत घातक है। जब तक शासन साफ सुथरा नहीं होगा। तब तक प्रशासन भी साफ सुथरा नहीं होगा। कानूनों से हर बात का सुधार करने के प्रयत्न या तो राजनैतिक पकड मजबूत करने के लिये होते हैं या आत्मश्लाघा के लिये। इससे परिणाम शून्य होता है। मेरे विचार में कानूनों की अधिकता यदि घातक ह तो कानूनों का अभाव भी कम घातक नहीं। आवश्यक नहीं कि सिर्फ समाज के कानून ही एकमात्र हल हो और शासकीय कानूनों का कोई उपयोग न हो। अतः इस मुद्‌दे पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

उत्तर— मुक्तानन्द के विचारों पर श्री सिंगला जी के विचार और भगत जी के उत्तर विचार योग्य विषय बन गये है। अतः गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है।

दुनियां में आमलोगों पर अपना शिकंजा मजबूत रखने के प्रकार की विचार धाराएँ वर्तमान हैं पहली साम्यवादी दूसरी पूँजीवादी। साम्यवादी विचारधारा धन को सभी समस्याओं का एक मात्र कारण घोषित करती है तथा सत्ता के सहारे प्रत्येक नागरिक को गुलाम बनाकर रखना चाहती है। पूंजीवादी व्यवस्था सत्ता को सभी समस्याओं का कारण घोषित करती है तथा धन के सहारे आम लोगों को गुलाम बनाकर रखना चाहती है। दोनों ही विचारधाराओं का उददेश्य आम लोगों को गुलाम बनाकर रखना है। शोषण दोनों का मुख्य लक्ष्य है। साम्यवादी विचार धारा का मुख्य केन्द्र रूस चीन रहा और पूँजीवादो विचारधारा का अमेरिका और बिटेन। एक तीसरी विचारधारा अब तक न तो कहीं स्थापित हो सकी है न हो कहीं प्रयोग हुआ है। अतः घुम फिरकर इन दोनों के ही बीच टकराव चलता रहता है। साम्यवादी विचारधारा के पास आकर्षक नारे पूँजीवाद की अपेक्षा अधिक है किन्तु कुल मिलाकर साम्यवाद पूंजीवाद की अपेक्षा अधिक घातक है। पूँजीवाद भी घातक तो है किन्तु पूँजीवाद का इलाज अब तक नहीं हो पाने से परिणाम अन्ततः साम्यवाद या समाजवाद की ओर ही ले जाता है। धन के केन्द्रीयकरण से श्रम शोषण होता है यह सही है किन्तु सत्ता का केन्द्रीयकरण तो अत्याचार की

सीमा तक बढ जाता है जो शोषण की अपेक्षा कई गुना अधिक घातक है। सन् नब्बे से पूर्व का भारत साम्यवाद की तरफ झुका हुआ था और नब्बे के बाद का पूँजीवादो को तरफ। नब्बे के पूर्व के वामपंथी पूँजीवाद का विकल्प समाजवाद या साम्यवाद को बताया करते थे। अब साम्यवाद के असफल सिद्ध हो जोने के बाद वे सब पूँजीवाद के विरूद्ध प्रचार करने तक सीमित ह। विकल्प नहीं बता पाते। सर्वोदय ग्राम स्वराज्य के माध्यम से पूंजीवाद का एक दूसरा विकल्प देने हेतु छटपटा भी रहा है तथा क्षमता भी रखता है किन्तु सर्वोदय भी आर्थिक शोषण से मुक्ति के नारों में उलझकर कभी अन्त्योदय तो कभी स्वदेशी में भटक जाता है और मूल ग्राम स्वराज्य को भ्रमित कर देता है।

श्री सिंगला जी ने जो कुछ भी लिखा है वह साम्यवाद का दोष है तथा श्री मुक्तानन्द जी या भरत गांधी ने पूँजीवाद के दोष गिनाये है। श्रो सिंगला जी ने कानूनों की अधिकता को मुख्य कारण माना है तथा आर्थिक असमानता को सत्ता को असमानता से कम घातक माना है। मुक्तानन्द जी तथा भरत गांधी जी नी ने कानूनों के प्रयोग को एक आवश्यक उपाय स्वीकार किया है। सिंगला जी के आयकर हटाने के तर्क के उत्तर में भरत जी ने लिखा है कि धनवान व्यक्ति का परमार्थ भाव ही जगेगा यह आवश्यक नहीं । हो सकता है कि उसका भोग भाव विकसित हो जाये। मैं भरत जी के इस तर्क से सहमत हूँ, किन्तु उनसे एक प्रश्न प्छना चाहता हूँ कि कानून की शक्ति से न्याय मजबूत होगा यह आपने कैसे मान लिया? हो सकता है कि कानून की शक्ति पाकर सत्ताधारी मदान्ध हो जाये ओर उसका दुरूपयोग करने लग। यदि धन का एकत्रीकरण अच्छे या बुरे दोनों परिणाम दे सकता ह, तो सत्ता का एकत्रीकरण भी तो उसी तरह दोधारी तलवार है। पचास वर्षो का इतिहास बताता है कि भारत में सत्ता ने अधिकाधिक अन्याय, अत्याचार और शोषण किया है। एकत्रित धन कि अपेक्षा कई गुना अधिक। अतः अर्थिक विषमता के विरूद्ध आपके सोच में सत्ता के केन्द्रीकरण का ही मार्ग छिपा है तो विनम्रतापूर्वक मैं इसे अस्वीकार करता हूँ। यदि सत्ता के विकेन्दीयकरण के साथ साथ आर्थिक विषमता दूर करने का कोई मार्ग समझा सकें तो मैं आपसे सहयोग कर सकूगां। सम्पूर्ण चर्चा में मैं श्री सिंघला जी को अपनी सोच से अधिक निकट पाता हूँ। मैं पूँजीवाद का कतई समर्थक नहीं। मैंने आर्थिक असमानता को दूर करने के उद्देश्य से व्यक्तिगत, पारिवारिक अथवा संस्था गत सम्पूर्ण सम्पति पर दो प्रतिशत वार्षिक तथा कृत्रिम उर्जा का वर्तमान मूल्य बढाकर दा से ढाई गुना करने का प्रस्ताव किया है। मेरे प्रस्ताव अनुसार शासकीय हस्तक्षेप भी कम होगा। और उपभोग की अधिकतम सीमा स्वाभाविक तौर पर निर्मित हो जावेगी। श्रम मूल्य अपने आप बढ जावेगा। श्रम की मांग भी बढेगी और उपयोग भी। पता नहीं आप लोग क्यों सभी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक उपायों से सामाधान न खोजकर सिर्फ कानून और सत्ता के सहारे आर्थिक न्याय की सोचते है। मैं अपनी बात पुनः स्पष्ट कर दूँ कि मैं सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के साथ साथ आर्थिक न्याय का पक्षधर हूँ। अतः मैने अपना पक्ष आपके पास रखना उचित समझा।

लोक स्वराज्य मंच ने भारत की कुल प्रमुख समस्याओं को ग्यारह के रूप में पंजीकृत किया है इसमें चोरी–डकैती, मिलावट–कमतौल, बलात्कार, आतंक–दादागिरी, धूर्तता–जालसाजी आदि को मिलाकर पांच अपराध शामिल है। साथ ही आर्थिक असमानता ,श्रम शोषण साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जातोय टकराव जैसी पांच कृत्रिम समस्याएँ भी शामिल ह तथा चरित्र पतन को ग्यारहवीं समस्या के रूप में चिन्हित किया गया है। नई व्यवस्था में इन ग्यारह समस्याओं का एकमुश्त समाधान खोजना होगा। मुक्तानन्द जी तथा भरतगांधी के सुझाव को यदि लागू भी कर दे तो उससे श्रम शोषण तथा आर्थिक असमानता पर विशेष तथा भ्रष्टाचार पर आंशिक प्रभाव पड सकता है। इन दो समस्याओं के समाधान से अन्य समस्याओं का कोई संबंध नहीं है। इसके विपरीत सत्ता के केन्द्रीयकरण का खतरा और अधिक बढ जायगा। यदि लोक स्वराज्य प्रणाली क अनुसार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण इस तरह होता है कि शासन के दो भाग कर दिये जावें 1. केन्द्रित 2. विकेन्द्रित । केन्द्रित शासन के पास अपराध नियंत्रण के सिर्फ पांच दायित्व रहेंगे। अन्य समस्याओं के समाधान का दायित्व विकेन्द्रित शासन के पास रहेगा। केन्द्रित शासन को सरकार तथा विकेन्द्रित शासन का स्थानीय व्यवस्था का नाम देंगे। सत्ता के विकेन्दोयकरण से शासन को पांच समस्याओं के समाधान में बहुत सुविधा रहेगी। अन्य 6 समस्याएँ स्थानीय संस्थायें आसानी से हल कर लेंगी।

आर्थिक असमानता तथा श्रम शोषण के समाधान में स्थानीय संस्थाओं की प्रत्यक्ष तथा केन्दोय शासन की अप्रत्यक्ष भूमिका होगी। केन्द्र सरकार इसमें सम्पति कर तथा कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से सहायता करेंगी। मेरा आपसे निवेदन है कि आप सिंगला जी के इस सुझाव पर ध्यान दें कि अब तक साम्यवादी नारों से न कुछ हुआ हैं न ही होगा। सिर्फ आकर्षक नारे सत्ता के निकट पहुंचाने का आधार बन सकते हैं किन्तु समस्याओं के समाधान के नहीं।

2 श्री आयुष्मान सिंह, आजमगढ उत्तरप्रदेश

प्रश्न– मैंने आपकी बहु चर्चित पुस्तक अपराध और नियंत्रण को ध्यान से पढा। आपने अपराध की परिभाषा मं व्यक्ति के मूल अधिकार हनन को मुख्य माना है। क्या शोषण अपराध नहीं है जो आपने उसे अपराध से अलग रखा है?

उत्तर– शोषण शब्द की परिभाषा मेरे विचार में यह है "किसी मजबूत व्यक्ति द्वारा किसी कमजोर की मजबूरी का लाभ उठाना या उठाने का प्रयास करना"। यदि किसी कमजोर द्वारा मजबूत से एसा लाभ लिया जाता है तो वह शोषण नहीं माना जाता। शोषण चार प्रकार का होता है 1. बुद्धिजीवियों द्वारा श्रम जीवियों का शोषण 2. राजनैतिक शक्ति प्राप्त व्यक्तियों द्वारा सामान्य नागरिकों का शोषण 3. धनवानों द्वारा धनहीनों का शोषण 4. धूर्तो द्वारा शरीफों का शोषण। वर्तमान समय में चारों प्रकार के शोषण समाज में अस्तित्व में है। शोषण के राकने के दो ही मार्ग है। 1. समाज द्वारा 2. कानून द्वारा। समाज का अस्तित्व ही नही होने से उसका कोई प्रभाव नहीं है। कानून स्वयं में शोषण के माध्यम बने हुए होने से एक शोषण कम होकर दूसरा

शोषण बढ जाता है। वर्तमान समय में अनेक ऐसे कानून हैं जो शोषण रोकने के नाम पर बनने क बाद भी शोषण के आधार बने हुए है। न्यूनतम मजदूरी के कानून श्रम शोषण पर नियंत्रण हेतु बनाये गये थे किन्तु ये कानून ही स्वयं में शोषण बड माध्यम बने हुए हैं।

शोषण स्वयं में काई अपराध नहीं है बल्कि अनैतिक है। हम शोषण को असामाजिक कार्य कह सकते ह किन्तु समाज विराधी नहीं। शोषण करना अच्छा कार्य नहीं है किन्तु इसे शासकीय कानूनों से रोकने का प्रयास घातक है क्यांकि शोषण बहुत व्यापक अर्थ रखता है तथा किसी व्यक्ति के मूल अधिकार पर कोई आकमण या कटौती नहीं करता। किसी जंगल में प्यास से तडप रहे एक राजा को एक गिलास पानी के बदल उसका आधा राज्य मांगने वाली बुढिया तथा एक गरीब महिला को ऐसे ही प्यास से तडपने की परिस्थिति में किसी सम्पन्न व्यक्ति द्वारा उसके जमीन लिखवाकर पानी देने में दोनों उदाहरण लगभग एक समान होते हुए भी पहला शोषण नहीं है और दूसरा है। दूसरा उदाहरण शोषण होते हुए भी अपराध नहीं है भले ही हम उसे अमानवीय कह सकते ह।

आज भारत में शोषण के विरूद्ध बहुत योजनाएं बनाइ जाती है। शाषण वास्तव में एक हथियार बना हुआ है शोषण करने का। शोषण शब्द का सर्वाधिक प्रयोग साम्यवादी अथवा समाजवादी किया करते है। किन्तु उनकी व्यवस्था में आर्थिक शोषण का स्थान राजनैतिक शोषण या अपराध ले लिया करता है। भारत में बुद्धिजीवियों द्वारा श्रम का जैसा शोषण हो रहा ह उसमें शोषण शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है। छत्तीसगढ के श्रमिक वर्षाकाल के बाद छत्तीसगढ के बाहर रोजगार के लिये पलायन किया करते ह। इस पलायन स छत्तीसगढ के श्रम खरीदने वालों को कष्ट होता था क्योंकि श्रम अभाव तथा श्रम मूल्य बढ जाता था। इन श्रमिकों का पलायन रोकने का कानून उनका शोषण रोकने के नाम पर ही बनाया गया। आज वे मजदूर या तो अधिकारियां को पैसा देकर पलायन कर रहे हैं अथवा यही रहकर औने पाने मूल्य पर अपना श्रम बेचने के लिये मजबूर है। ऐसे सैकडों कानून बने है जो शोषण रोकने के नाम पर शोषण करने के लिये बनाये गये ह।

एक दूसरा उदाहरण और देखें। श्रम शोषण रोकने का एक ही मार्ग है "श्रम प्रधान रोजगार के अवसर पैदा करना'। हमारी सरकार रोजगार के अवसर उत्पन्न करने के स्थान पर रोजगार देने के काम मे लगी है साथ ही वह श्रम प्रधान रोजगार के स्थान पर शिक्षित बेरोजगारी दूर करने में लगी है। रोजगार देने के प्रयास स्वयं में रोजगार के अवसर घटाते हैं तथा शिक्षित बेरोजगारी दूर करना तो स्वयं में ही श्रम के विरूद्ध बुद्धिजीवियों का षडयंत्र है। इस तरह मुझे यह स्पष्ट दिखता है कि भारत में यदि शोषण को काबू में करना है तो शोषण रोकने क सारे शासकीय प्रयास बन्द कर देने चाहिए। यदि कोई व्यक्ति शोषण करता है ता गांव के लोग उसका उपाय खोजंगे। सरकार नहीं।

शोषण अपराध है कि नहीं यह बिल्कुल विवादास्पद नही है। कोई व्यक्ति यदि किसी का कोई काम अस्वीकार कर सकता है और वह अपराध नहीं है तो वही काम उस व्यक्ति से किसी सहमत समझौते के आधार पर करना क्यों अपराध हो सकता है। यह समझौता भले हो कितना ही अमानवीय क्यों न हा जैसे किसी आदमी से एक दिन पूरा काम कराकर पच्चीस रूपये देना यदि अपराध है तो उस व्यक्ति को पच्चीस रूपये में भी काम न देने वाला उससे भी बडा अपराधी है। जो समाज न्यूनतम श्रम मूल्य घोषित करता है उसका यह दायित्व भी है कि वह उक्त श्रम मूल्य पर काम की व्यवस्था करे। यदि नहीं करता है तो दोषी वह है जो न्यूनतम श्रम मूल्य घोषित करके भी काम नहीं देता न कि वह जो कम मूल्य पर काम देता ह। इस तरह कम मजदूरी देना शोषण हो सकता ह किन्तु अपराध नही। मेरे विचार में ऐसा कोई भी शोषण है ही नहीं जो अपराध हो यदि ऐसा कोई शोषण है तो वह शोषण न होकर सीधा सीधा अपराध ही है।